I J R S S I S, Issue (IX), Vol. (I), May 2023: 277-285
A Double-Blind Peer Reviewed Journal
OPEN ACCESS
e-ISSN 2347 – 517X
Original Article

Reg. No. : MH-NGP/0000167

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCHES IN SOCIAL SCIENCE AND INFORMATION STUDIES
© VMS RESEARCH FOUNDATION www.ijrssis.in

''जे० कृष्णमूर्ति की शिक्षा नीति की प्रासंगिकता का अध्ययन''

डॉ० रूमा तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (शिक्षाशास्त्र विभाग)
रजत कॉलेज लखनऊ (उ०प्र०)

Communicated : 03.02.2023	Revision : 09.03.2023 Accepted : 07.04.2023	Published: 30.05.2023

सारांश :
व्यक्तियों की अभिवृत्तियों का परिष्कार करना दर्शन का कार्य है। हम अपने दैनिक कार्य में अपने दृष्टिकोण से प्रेरणा लेते है। ये दृष्टिकोण अनेक प्रकार के होते है। इसलिये ये कहा जाता है कि महान पुरूषों के अपने–अपने दार्शनिक दृष्टिकोण होते है। जे कृष्णमूर्ति जी का शिक्षा के प्रति अपना अनौखा, नवीन तथा व्यापक दर्शन रहा है।, जिसका प्रस्तुतीकरण प्रकृतिवाद विचारवाद, प्रयोजनवाद तथा यर्थाथजनवाद का सन्दर्भ लेते हुए किया जायेगा। इस प्रकार से अपनी शैक्षिक विचारधारा की विश्वसनीयता स्पष्ट हो सकेगी। महान षिक्षाषास्त्री ''गार्लिक'' ने षिक्षण के तरीकों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि षिक्षक का निर्णय कि वह क्या पढ़ायेगा, विषय साम्रगी को व्यवस्थित करना और बाद में वह सोचता है कि वह उनको किस प्रकार से व्यवस्थित करके प्रस्तुत करना है आदि कार्य षिक्षण विधियों में आते है। श्री कृष्णमूर्ति छात्रों पर तथाकथित रूप से थोपे गये अनुषासन के विरोधी है वे छात्र को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्षधर है किन्तु स्वतंत्रता का अर्थ मनमानी करना नहीं होता ऐसी स्वतंत्रता तो सर्वत्र अवस्था ही फैलायेगी स्वतंत्रता का अर्थ छात्र को समग्र अवलोकन करने की स्वतंत्रता, जिज्ञासा व्यक्त करने की स्वतंत्रता, षिक्षक से वार्तालाप एवं सन्देह प्रकट करने की निरीक्षण करने की स्वतंत्रता आदि है कृष्णमूर्ति अनुषासन को व्यवस्था का नाम देते है और स्वतंत्रता एवं व्यवस्था का एक सिक्के के दो पहलू मानते है। व्यवस्था स्वाभाविक रूप से खिलने वाला फूल है जो कभी मुरझाता नहीं है क्योंकि यह अन्तरमन की उपज है।

महत्वपूर्ण शब्द : जे. कृष्णमूर्ति, शिक्षा नीति, प्रासंगिकता

प्रस्तावना :

पाश्चात्य शिक्षा–शास्त्रियों ने शिक्षा के व्यापक स्वरूप को अपनी सोच, दृष्टिकोण तथा आन्तरिक बल के आधार पर प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भगवत गीता के अनुसार आत्माान एवं विराट पुरूष का ज्ञान प्राप्त करना ही शिक्षा है। महात्मा बुद्ध के संदेश में व्यक्ति को सत्यान्वेषण करना चाहिए, और नैतिक गुणों को व्यवहार में उतारना चाहिए। ''महात्मागांधी'' के अनुसार शिक्षा से मेरा तात्पर्य इस प्रक्रिया से है जो बालक एवं मनुष्य के शरीर एवं आत्मा के सर्वोत्कृष्ट रूपों को प्रस्फुटित कर दें। ''रवीन्द्रनाथ टैगोर'' ने शिक्षा को जीवन और सम्पूर्ण सृष्टि में तादात्म स्थापित करना बताया है। ''राधाकृष्णन'' के अनुसार–शिक्षा सूचना प्रदान करने एवं कौशल का प्रशिक्षण देने तक सीमित नहीं है। इसे शिक्षित व्यक्ति को मूल्यों का विचार भी प्रदान करना है वैज्ञानिक एवं तकनीकी व्यक्ति भी नागरिक है, अतः जिस समुदाय में वे रहते है उस समुदाय के प्रति उनका भी सामाजिक उत्तरदायित्व है। कवियत्री ''सरोजनी नायडू'' के विचार से शिक्षा व्यक्ति में आत्म प्रकाशन की अधिकार पूर्ण शैली को खोजने मे सच्ची लगन और मौलिकता का विकास करना है। ओशो–शिक्षा मानव आत्मा में जो कुछ निहित है उसे अभिव्क्त करने का माध्यम और उपाय है। सम्यक शिक्षा वह है जो उसे प्रभु होने की ओर

मार्गदर्शन दे सके। शिक्षा तब सप्राण होगी, जब वह अपनी आजीविका को ही नहीं वरन् जीवन जीना भी सिखायेगी। मैं सब कुछ जान लूँ, लेकिन स्वयं की ही सत्ता, से अपरिचित रह जाऊँ तो वह जानना वस्तुतः जानना नहीं हैं ऐसे ज्ञान का क्या मूल्य जिसके केन्द्र पर ''स्वाान'' न हो? यदि स्वयं के भीतर अंधेरा हो तो सारे जगत में भरे प्रकाश का हमारे लिए क्या उपयोग है। ज्ञान का प्रथम चरण ''स्वज्ञान'' से ही चाहिए, क्योंकि ज्ञान का अंतिम लक्ष्य वहीं है। ''

जीवन परिचय –

ग्यारह मई अट्ठारह सौ पच्चानवे (1895) को भारत के दक्षिण क्षेत्र में धार्मिक प्रदेश ''आन्ध्र प्रदेश'' के चित्तूर जिले में एक गॉव ''मदनपल्ली'' में आपका जन्म हुआ था। आपके माता पिता ''जिद्दू संजीवम्मा'' एवं ''जिद्दू नारायनीय ''थे। आप लोग बहुत ही धार्मिक स्वभाव के और श्रीकृष्ण के भक्त थे। इसके साथ ही साथ आप लोग पुराने ''थियोसोफिस्ट'' भी थे। आपका जन्म भगवान श्रीकृष्ण के प्रति भक्तिभाव और धार्मिक–वृत्ति के कारण माना जाता है। सम्भवतयः आपका जन्म श्रीकृष्ण जी के जन्म लेने की परिस्थिति में आठवी संतान के रूप में हुआ था। सभी लोग आप को श्रीकृष्ण जी की प्रतिभूति समझने लगे। इसीलिए प्रेम से इनको ''कृष्ण जी'' भी कहने लगे और आगे चलकर आप जिद्दूकृष्णमूर्ति के नाम से संसार में प्रसिद्व हुऐ।

अचानक माता संजीवम्मा का स्वर्गवास सन् 1905 ई0 में हो गया। आपके पिता श्री के सामने बच्चों के पालन पोषण की समस्या उत्पन्न हुई, इसलिए सन् 1908 ई0 में आप बालक जिद्दू कृष्णमूर्ति सहित अपने चार पुत्रों को लेकर 'थियोसोफिकल' सोसायइटी मद्रास चले गये। उस समय श्रीमती एनीवेसेन्ट इस सोसाइटी की सर्वेसर्वा थी। वहां पर रहने का आमंत्रण श्रीमती एनीवेसन्ट के आमंत्रण पर मिला था। अतः श्री जिद्दू नारायनी अपने इन बच्चों के साथ वहां पर रहने लगे और अपनी सेवायें सोसाइटी को समर्पित कर दी ; ताकि बच्चों का अच्छा पालन हो सके।

प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य हैं–

जे0 कृष्णमूर्ति की शिक्षानीति की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

शोध विधि :

इस अध्ययन में जे0 कृष्णमूर्ति के शिक्षा सम्बन्धी विचारों की समीक्षा की गयी है किसी भी शिक्षा शास्त्री के विचारों पर उसके जीवन की घटनाओं एवं परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है अतः जे0 कृष्णमूर्ति के जीवन की प्रमुख घटनाओं एवं उनके कार्यों का सबसे पहले विश्लेषण किया गया है। शिक्षा सम्बन्धी विचारों को अध्ययन करने की एक विधि ऐतिहासिक विधि है जिसमें इतिहास की पद्धति अपनायी जाती है। इस पद्धति में व्यक्ति के जीवन की प्रमुख घटनाओं को देखा जाता है और उन घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है।

शिक्षा नीति :–

षिक्षण को अंतः क्रिया के आधार पर सम्पन्न किया जाता है। षिक्षा में बच्चों को केन्द्र मानकर मनोवैज्ञानिक तरीकों से ज्ञान दिया जाता है ताकि प्रत्येक छात्र ज्ञान को व्यवहारिक रूप से आत्मसात कर सके। महान षिक्षाषास्त्री ''गार्लिक''

ने षिक्षण के तरीकों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि षिक्षक का निर्णय कि वह क्या पढ़ायेगा, विषय साम्रगी को व्यवस्थित करना और बाद में वह सोचता है कि वह उनको किस प्रकार से व्यवस्थित करके प्रस्तुत करना है आदि कार्य षिक्षण विधियों में आते है।

शिक्षण–विधि :–

जे0 कृष्णमूर्ति जी ने प्राचीन तथा प्रचलित षिक्षण प्रविधियां, और षिक्षण सूत्रों को न मानकर नवीन षिक्षण विधियों को माना है, क्योंकि उनका षिक्षण करने का तरीका मनोवैज्ञानिक रहा है। वे षिक्षा को भयरहित, दवाब रहित तथा संस्कार रहित मानते है। इसीलिए उनकी षिक्षण विधियां भी भिन्नता रखती है।

बच्चों में क्रिया करने की भावना होती है। इस भावना का विकास स्वक्रिया या हाथ से कार्य करना के द्वारा सीखने की ओर प्रेरित किया जाना चाहिए ताकि वह विभिन्न प्रकार के स्वनिर्मित अनुभवों (ज्ञान) को एकत्रित कर सकें। आज हम विभिन्न तरीकों से षिक्षा देने का प्रयत्न करते है जो उनके स्वाभाविक विकास में बाधक होता है। स्वक्रिया द्वारा सीखा गया ज्ञान रूचिमय, क्रियामय स्थायी और व्यवहारिक होता है जो बालक के सर्वागीण विकास के लिए आवष्यक है।

बच्चों में खोज प्रवत्ति जन्म से होती है। उनकी संवेदन शक्ति तथा प्रत्यक्षीकरण भाव बहुत ही तीव्र होता है। परिवार की वस्तुओं, व्यक्तियों, विचारों, इषारों को पहचान कर व्यवहार करना दिन प्रतिदिन सीखते है और नया करने की ओर ललक बनी रहती है। अतः वे अपनी समस्यायों, बाधाओं, रूकावटों, उलझनों को स्वंय दूर कर सकें, ऐसा हल खोजने की प्रवत्ति का विकास षिक्षक द्वारा होना चाहिए।

बच्चों में अवलोकन या निरीक्षण की प्रवत्ति विषेष होती है। अतः वे सभी ज्ञानकारियों को छूकर देखकर, सूँघकर और समझकर प्राप्त करते है। अवलोकन से ज्ञान की प्रतिमा उनके मस्तिष्क में स्थापित हो जाती है और फिर भी वे उसका प्रयोग अपने व्यवहार में करने लगते है। अतः षिक्षण को निरीक्षण विधि के द्वारा दिया जाये तो वह सार्थक एवं स्थायी बन सकेगा। उनका मत है कि षिक्षक को स्वाभाविक तरीकों का प्रयोग करना चाहिए। मानव निर्मित बाध्यताओं से स्वाभाविक 16वी शताब्दी के उत्तरार्द्व में एवं 17वी शताब्दी के पूर्वान्ह में बेकन ने अपने विचारों से पष्चिम को अत्यधिक प्रभावित किया। उसने सन्तावेषण के लिए वैज्ञानिक निरीक्षण पर बल दिया और कहा कि यर्थाथ का ज्ञान अन्तदर्षन से प्राप्त न हेाकर बाह्य निरीक्षण से प्राप्त होता है।

कृष्णमूर्ति का मानना है कि कोई भी षिक्षक किसी भी प्रकार सत्ता का भय दिखाकर बालक में सदगुणों का विकास नही कर सकता इनके अनुसार सत्ता बड़ी भयानक, विनाषकारी एवं निरकुंष है अतः सत्ता का भय दिखाये बिना छात्र में अनुषासन ले आना कि वह समय पर भोजन करें, समय पर विद्यालय पहुॅचे, अनावष्यक बातचीत न करें साथ ही उनमें आत्म सम्मान की भावना भी जागृत हो और छात्रों से सम्मान की मांग करता है तो स्वंय भी छात्रों का सम्मान करें जो षिक्षक स्वंय अपने को नही समझते यदि बालक के साथ अपने सम्बन्ध को नही समझते, उनमें मात्र सूचनाएं ही भरते रहते है तथा

परीक्षायें पास कराते रहते है वह नवीन षिक्षा का सृजन नही कर सकते। छात्र इसलिए होता है कि उसका मार्ग दर्षन किया जाये यदि मार्गदर्षक स्वंय ही भ्रन्त, संकीर्ण, राष्ट्रवादी एवं सिद्वान्तों से ग्रस्ति है तो स्वाभाविक ही उसका षिष्य भी वहीं होगा जो वह है

ऐसी अवस्था में षिक्षा और अधिक भ्रन्ति तथा कलह का कारण बनेगी। एक सच्चा अध्यापक वह नहीं जिसने एक प्रभावषाली षिक्षण संस्थान का निर्माण किया या जो राजनीतिज्ञों का एक उपकरण है और न तो वह एक आदर्ष, एक विष्वास अथवा एक देष से बंधा है। सच्चा अध्यापक अभ्यंतर से समृद्व होता है। अतः अपने लिये कुछ नहीं चाहता, वह महत्वाकांक्षी नहीं होता इसलिए वह किसी भी रूप में सत्ता की चाह नहीं करता वह अपने अध्यापन को पद अथवा सत्ताधिकार प्राप्त करने का साधन नहीं बनाता और इसलिए समाज की बाद्वता से तथा संस्कारों के नियंत्रण से मुक्त होता है। एक प्रबुद्व सभ्यता में ऐसे अध्यापकों का आधारभूत स्थान हेाता है क्योंकि सच्ची संस्कृति इन्जीनियरों और टेकनीषियों पर नहीं बल्कि षिक्षकों पर आधारित होती है।

षिक्षार्थी

षिक्षार्थी हमेषा ज्ञान का भूखा होता है। वह प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ सीखता है और उसे अपने अनुभव का एक हिस्सा बना लेता है। सीखना तभी घटित हेाता है जब षिक्षक एवं षिक्षार्थी परस्पर संवाद की स्थिति में होते है। संवाद की अवस्था एक ऐसी प्रेम पूर्ण अवस्था होती है जिसमें चेहरे पर, मन पर तथा गहराई में खो जाते है। इनके अनुसार –

''मेरे विचार से सीखना तभी होता है, जब आपके और छात्र के बीच वही संवाद की अवस्था हो जो मेरे और आपके बीच है और संवाद का अर्थ सम्प्रेषण करना, सम्पर्क में आना, किसी अनुभूति को संचारित करना, सहभागी होना, न केवल शाब्दिक स्तर पर बल्कि बौद्विक स्तर पर भी अनुभूति का और अधिक गहराई एवं और अधिक सूक्ष्मता से अनुभव करना।

जे0कृष्णमूर्ति जी के षिक्षार्थी सम्बन्धी विचारों को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया जाता है –

1. षिक्षार्थी को स्वतंत्रता और अनुषासन मय जीवन का विकास करना चाहिए ताकि वह सम्यक बुद्वि, संवेदनषीलता तथा अवबोध का विकास करके निष्चित व्यवस्था का अनुगमन कर सके।
2. षिक्षार्थी को एकाग्रता का विकास करने के लिए ध्यान करने की आदत डालनी चाहिए ताकि वह सत्य की अनुभूति शांतपूर्ण तरीके से कर सके।
3. षिक्षार्थी को समग्र अवलोकन विधि का विकास करना चाहिए, जिससे उसमें समिष्ट के प्रति जागरूकता और समानता का भाव उत्पन्न हो सके।
4. षिक्षार्थी को लालची तथा स्वार्थी नहीं होना चाहिए ताकि वह पुरातन तन संस्कारों से रहित होकर स्वनिर्मित जीवन का विकास कर सके।
5. षिक्षार्थी की भावना धार्मिक हो और मनोवैज्ञानिक। ताकि वह एक नूतन विष्व का

निर्माण मानवीय प्रेम और सूक्ष्म तथा क्रमबद्व ज्ञान से कर सकें।

6. षिक्षार्थी को समग्र पर्यावरण के प्रति जागरूक होना चाहिए ताकि वह संसार में फैले सत्य, सौन्दर्य, करूणा, कृपा के सही रूप से दर्षन कर सके।

7. स्वाभावकिता का विकास छात्र तभी कर सकता है जब किसी भी प्रकार की आज्ञाकारिता से स्वं को मुक्त करता है। तभी उसका सोच ताजगी भरा एवं स्वाभाविक होता है जो स्व अनुभूति से विकसित हेाता है।

8. षिक्षार्थी को सदैव भय से मुक्त रहना चाहिए। भय का आविर्भाव मृत्यु(षारीरिक और विचारों की) से होता है। अतः जब हम मैं को समाप्त कर देते ह तो मृत्यु का भय सदैव के लिए समाप्त हो जाता है।

9. षिक्षार्थी को अहिंसा का पालन सदैव करना चाहिए ताकि वह किसी को भी विचार भाव, क्रिया आदि के द्वारा शोषण से बचा सके। इस प्रकार से मानवजगत में शांति स्थापित हो सकती है।

10. षिक्षार्थी को अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक होना चाहिए ताकि वह उनका निदान अपने तरीके से कर सके।

11. षिक्षार्थी को अद्वैतवादी होना चाहिए जिससे उसमें संसार के प्रति आसक्त और अनासक्त विकसित हो सके। यही एक रास्ता परम् आनन्द का स्रेत है।

12. प्रत्येक षिक्षार्थी को मुक्ति का प्रयास करना चाहिए ताकि वह सांसारिक भाव से ऊपर उठकर सम्रग चेतना की अनुभूति कर सके। इस अनुभूति में वह संसार का करूणा, दया, प्रेम, की वर्षा करता है और स्वंय में शांति, कोमलता, सौम्यता, उदारता, सहृदयता और सौन्दर्य का विकास करता है।

अनुषासन

अनुषासन प्रत्येक मानव, समाज और राष्ट्र के विकास के लिए आवष्यक होता है। प्रष्न यह उठता है कि अनुषासन का स्वरूप दमनात्मक, प्रभावात्मक या मुक्तामक आदि में से कैसा हो? षिक्षार्थी के लिये अनुषासन परमावष्यक माना गया है। बच्चों का विकास विद्यालय के वातावरण में समाज के लिये तैयार किया जाता है। अतः विद्यालय की अपनी व्यवस्था, दिनचर्या, अध्ययन–अध्यापन शैली आदि ही अनुषासन का परिणाम होता है। इसीलिए बोर्ड आफ एजूकेषन ने अनुषासन को एक साधन माना है जिसके द्वारा बच्चों को व्यवस्था, उत्तम आचरण और उनमें निहित सर्वोत्तम गुणों की आदत को प्राप्त करने के लिए प्रषिक्षित किया जाता है।

चूंकि जे0कृष्णमूर्ति जी अनुषासन शब्द को उपयुक्त नहीं मानते है अतः इन्होनें व्यवस्था को ही अनुषासन माना है। इन्होनें ''षिक्षा संवाद (पृ022) में लिखा हैः–

''अनुषाासन का अर्थ अनुकूलन, अनुकृति आज्ञा पालन है। इस का अर्थ यह भी है कि जो तुम्हें बताया जाता है वह करो। क्या ऐसा नही है। परन्तु यदि आप स्वतंत्र होना चाहते है और प्रत्येक मनुष्य को पूर्णतया स्वतंत्र होना चाहिए अन्यथा वे पुष्पित नहीं हो पायेगें, अन्यथा वे वास्तविक मनुष्य नहीं बन पायेगें तो आपको स्वंय अपने लिये वह पता लगाना होगा कि व्यवस्थित

होने का क्या तात्पर्य है। इन सबकी खोज ही अनुषासन है।

श्री कृष्णमूर्ति छात्रों पर तथाकथित रूप से थोपे गये अनुषासन के विरोधी है वे छात्र को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्षधर है किन्तु स्वतंत्रता का अर्थ मनमानी करना नहीं होता ऐसी स्वतंत्रता तो सर्वत्र अवस्था ही फैलायेगी स्वतंत्रता का अर्थ छात्र को समग्र अवलोकन करने की स्वतंत्रता, जिज्ञासा व्यक्त करने की स्वतंत्रता, षिक्षक से वार्तालाप एवं सन्देह प्रकट करने की निरीक्षण करने की स्वतंत्रता आदि है कृष्णमूर्ति अनुषासन को व्यवस्था का नाम देते है और स्वतंत्रता एवं व्यवस्था का एक सिक्के के दो पहलू मानते है। व्यवस्था स्वाभाविक रूप से खिलने वाला फूल है जो कभी मुरझाता नहीं है क्योंकि यह अन्तरमन की उपज है। कृष्णमूर्ति के अनुसार एक अनुषासित मन कदापि स्वतंत्र नहीं होता और न वह मन स्वतंत्र है जिसने इच्छाओं को दबा दिया है केवल वही मन स्वतंत्र है जो इच्छाओं की समस्त गतिविधियों को भली प्रकार समझता है। उस गति को संचारित करता है जो विचार एवं विष्वासों के घेरे के भीतर होती है। ऐसे अनुषासन से ही व्यवस्था आती है व्यवस्था से स्वतंत्रता का जन्म होता है और स्वतंत्रता में ही अच्छाई प्रेम एवं प्रज्ञा का प्रस्फुटन होता है, स्वतंत्रता में ही पक्षी उड़ सकता है, बीज अंकुरित होता है, बालक विवेक जन्य आन्तरिक स्वतंत्रता में दूसरों का ध्यान रखकर वार्ता को ध्यान से सुनकर, समय पालन कर, स्वाध्याय कर आत्मानुषासन को प्राप्त होता है। यही उत्तम अनुषासन है।

विद्यालय

आधुनिक युग में स्कूल (विद्यालय) शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द स्कोला से मानी जाती है। इसका अर्थ होता है आराम या अवकाष। इस सन्दर्भ में ए0 एफ0 लीच ने लिखा है–''वाद–विवाद या वार्ता के स्थान जहां एथेन्स के युवक अपने अवकाष के समय को खेल–कूद, व्यायाम और युद्ध के प्रषिक्षण में बिताते थे, धीरे–धीरे वषन और उच्चकलाओं के स्कूलों में बदल गये। एकेडमी के सुन्दर उद्यानों में व्यतीत किये जाने वाले अवकाष के माध्यम से विद्यालयों का विकास हुआ।''

जे0कृष्णमूर्ति जी के विद्यालय सम्बन्धी विचार को निम्न विषेषताओं में प्रस्तुत किया जाता हैः–

1. विद्यालय का वातावरण समन्वित व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है जो एक नवीन विष्व तथा संस्कृति के निर्माण में सहयोग देता है। इन्होनें षिक्षा एवं जीवन का महत्व (पृ073) लिखा है– ''आषा केवल समन्वित व्यक्ति से ही की जा सकती है और उन्हें उत्पन्न करने में छोटे विद्यालय ही सहायक सिद्व हो सकते है। यही कारण है कि बड़ी षिक्षण संस्थाओं में आधुनिकतम एवं श्रेष्ठतम षिक्षा पद्धतियों का प्रयोग करने के स्थान पर सीमित संख्या में बालकों एवं बालिकाओं वाले ऐसे विद्यालयों का होना अधिक महत्वपूर्ण है, जिनमें उचित प्रकार के षिक्षक अध्यापन कार्य करते हो।

2. विद्यालय के ऊपर अधिकार या नियंत्रण न सरकार का हो, और न समाज का बल्कि उस व्यक्ति का हो जो स्वंय के प्रति ईमानदार तथा जागरूक है। वह स्वंय को जानता है, बच्चों को

समझता है और नवीन पर्यावरण के सृजन में रूचि रखता है जे0कृष्णमूर्ति का मत है कि ऐसा व्यक्ति अपने घर पर ही छोटामोटा विद्यालय खोलकर उत्साह के साथ षिक्षण कर सकता है। यदि वह सही है तो उसे अवसरों की कमी नहीं रह सकती। अच्छे विद्यालय की स्थापना के लिए आत्म त्याग, प्रेम औश्र अवबोध की आवष्यकता होती है। यदि बालक के प्रति प्रेम है तो सभी वस्तुए सम्भव है, अन्यथा धन अनिवार्यतः भ्रष्ट बना देता है।

3. विद्यालय एक नाव, परिवार कर तरह से हेाता है जिसे चलाने वाला योग्य, अनुभवी, उत्साही, क्रियाषील तथा प्रज्ञायुक्त होना चाहिए, ताकि विद्यालय रूपी परिवार अपने अस्तित्व को नवीन कलेवर में विकसित कर सके। जे0कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि सही विद्यालय का निर्माण प्रधानाध्यापक तथा उसके सहयोगियों द्वारा ही होता है। एक दृढ़ चरित्र वाला व्यक्ति विद्यालय का निर्माण तो कर सकता है लेकिन साथियों का सहयोग नहीं ले सकता।यदि सभी विद्यालय के लोग मुक्त एवं विवेकषील होने के लिए प्रयत्नषील हो तो प्रत्येक स्तर पर एक दूसरे का साथ एवं सहयोग संभव हो जाता है।

4. विद्यालय का सामूहिक रूचि का केन्द्र होना चाहिए। जब आपस के विचार और कार्य टकराते है तो विरोध और भ्रान्ति पैदा हेाती है, जिसको प्रेम व उत्साह के द्वारा दी करके सहयोग का सम्बर्द्धन दिया जाता है। आपने ''षिक्षा एवं जीवन का महत्व''(पृ0 84–85) में लिखा है–''किसी भी अध्यापक को प्रधानाध्यापक से भयभीत नहीं होना चाहिए और न प्रधानाचार्य को ही अपने वरिष्ठ, अध्यापकों से। जब सभी व्यक्तियों के बीच समानता होती है तो सुखद सहमति संभव होती है यही सही प्रकार के विद्यालय का चरित्र होता है। वास्तविक सहयोग तभी प्राप्त होता है जब उच्च एवं निम्न भाव का अस्तित्व ही न रहे। यदि किसी प्रकार की कठिनाई या जायेगा

5. विद्यालय की कार्यप्रणाली की समरसता उसकी समाान वितरण की भावना पर टिकी होती है। आज मनोवैज्ञानिक तथा षिक्षा– शास्त्री विद्यालय के कार्यो को बोझ न मानकर रचनात्मक कार्य मानते है। अतः प्रत्येक की क्षमता तथा योग्यता के आधार पर कार्य (भार)का समान वितरण विद्यालय में सुखद वातावरण तैयार करता है। इनके अनुसार –''सही षिक्षा एक बड़े समूह में नहीं दी जा सकती। प्रत्येक बालक का अध्ययन के लिए धैर्य, सावधानी सम्यक बुद्धि की आवष्यकता होती है। बालक की प्रवृत्तियों का उसकी समिवृत्तियों का एवं उसके स्वभाव का निरीक्षण उसकी कठिनाइयों को समझना, उसके वंषानुक्रम तथा पैत्रिक प्रभाव को ध्यान में रखना, न कि उे किसी विषेष वर्ग कोटि के ही अन्दर रखना, इसे सबके लिए स्फूर्ति से भरे एक ऐसे नमनीय मन की आवष्यकता हेाती है जो किसी विषेष प्रणाली अथवा पूर्वाग्रह से अनुषासित नहीं है। उसके लिए कुषलता की तीव्र अभिरूचि की और सबसे अधिक प्रेम भावना की आवष्यकता होती है और ऐसे षिक्षकों का विकास करना जिनमें ये गुण हो आज की प्रमुख समस्याओं में से एक है।''

6. विद्यालय के संचालन में प्रधानाचार्य, षिक्षकवर्ग, छात्रवर्ग तथा कर्मचारीवर्ग सभी का उचित

प्रतिनिधित्व होना चाहिए ताकि जनतंत्रीय व्यवस्था का अनुपालन संभव हो सके। विभिन्न समितियों का गठन हो, कार्य वितरण हो, निर्देषन की व्यवस्था हो, उत्तरदायित्व का पालन किया जाये ताकि विद्यालय की सभी क्रियाओं में समरसता उत्पन्न हो सके। इस प्रकार से विद्यालय का प्रषासन ही जीवन में स्वषासन को स्थापित करने की पूर्व प्रस्तुति है।

7. विद्यालयों के द्वारा समग्र मानव जाति, समाज, राष्ट्र सम्प्रदाय धर्म, जाति, उच्च, निम्न आदि भेदभाव को मिटाकर सभी के कल्याण के भाव की स्थापना का विकास करना है। इसके लिए स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा आदि के भावों का विकास विद्यालयों के द्वारा होना चाहिए। हममें से प्रत्येक को सच्चा बनना होगा और हमें स्वंय को षिक्षित भी करना होगा। अतः सम्यक षिक्षा के लिए धैर्य, सहानुभूति, तथा प्रेम को चारो ओर फैलाना चाहिए, जिससे सभी प्रकाषित हो सके।

परिणाम एवं निष्कर्ष :–

1. एक सच्चा अध्यापक वह नहीं जिसने एक प्रभावषाली षिक्षण संस्थान का निर्माण किया या जो राजनीतिज्ञों का एक उपकरण है और न तो वह एक आदर्ष, एक विष्वास अथवा एक देष से बंधा है। सच्चा अध्यापक अभ्यंतर से समृद्व होता है। अतः अपने लिये कुछ नहीं चाहता, वह महत्वाकांक्षी नहीं होता इसलिए वह किसी भी रूप में सत्ता की चाह नहीं करता वह अपने अध्यापन को पद अथवा सत्ताधिकार प्राप्त करने का साधन नहीं बनाता और इसलिए समाज की बाद्वता से तथा संस्कारों के नियंत्रण से मुक्त होता है। एक प्रबुद्व सभ्यता में ऐसे अध्यापकों का आधारभूत स्थान हेाता है क्योंकि सच्ची संस्कृति इन्जीनियरों और टेकनीषियों पर नहीं बल्कि षिक्षकों पर आधारित होती है।

2. षिक्षार्थी हमेषा ज्ञान का भूखा होता है। वह प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ सीखता है और उसे अपने अनुभव का एक हिस्सा बना लेता है। सीखना तभी घटित हेाता है जब षिक्षक एवं षिक्षार्थी परस्पर संवाद की स्थिति में होते है।

3. विद्यालय एक नाव, परिवार कर तरह से हेाता है जिसे चलाने वाला योग्य, अनुभवी, उत्साही, क्रियाषील तथा प्रज्ञायुक्त होना चाहिए, ताकि विद्यालय रूपी परिवार अपने अस्तित्व को नवीन कलेवर में विकसितइ कर सके। जे0कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि सही विद्यालय का निर्माण प्रधानाध्यापक तथा उसके सहयोगियों द्वारा ही होता है। एक दृढ़ चरित्र वाला व्यक्ति विद्यालय का निर्माण तो कर सकता है लेकिन साथियों का सहयोग नहीं ले सकता। अतः अध्यापक सम्पूर्ण के लिए स्वंय को उत्तरदायी समझे।

4. विद्यालयों के द्वारा समग्र मानव जाति, समाज, राष्ट्र सम्प्रदाय धर्म, जाति, उच्च, निम्न आदि भेदभाव को मिटाकर सभी के कल्याण के भाव की स्थापना का विकास करना है। इसके लिए स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा आदि के भावों का विकास विद्यालयों के द्वारा होना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

कृष्णमूर्ति– द इयर्स ऑफ अवेकेनिंग : मेरी लुटियेंस,कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन, इण्डिया, मद्रास.

कृष्णमूर्ति– द इयर्स ऑफ फुलफिलमेंट : मेरी लुटियेंस, एवन बुक्स ,न्यूयॉक.

जे0 कृष्णमूर्तिः रेने फाउरे, चेतना, बम्बई.

द माइण्ड आफ जे0 कृष्णमूर्तिः संपादित– लुई एस0आर0वास, जैको पब्लिशिंग हाउस, बम्बई.

फिलोसोफी आफ जे0कृष्णमूर्तिः आर0के0 श्रृंगी, मुंशीराम, मनोहर लाल, नई दिल्ली.

कपिल, एच0के0 1980 अनुसंधान विधियां– आगरा.

पाण्डेय, आर0एस0 1970 शिक्षादर्शन आगरा.

पाण्डेय आर0एस0 1993 मूल्य शिक्षा आगरा.

ओड, एल0के0 शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि..